मोक्ष मार्गस्य नेत्तारं, भेत्तारं कर्म भूरतां।
ज्ञातारं विश्वतत्वानाम्, वन्दे तद्गुण लब्धये।

तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथराज में सप्तम अध्याय के माध्यम से व्रतों का वर्णन चल रहा है। व्रतों का स्वरूप किस तरह का होना चाहिए, यह सूत्र के माध्यम से बताया जा रहा है। अहिंसा, सत्य और असत्य इनका वर्णन हो चुका था। आगे ब्रह्मचर्य का वर्णन करने के लिए, उस ब्रह्म के विपरीत जो अब्रह्म है उसको समझने के लिए सूत्र आ रहा है-

Class 16

मैथुन-मब्रह्म॥**7.16**॥

यहाँ पर हिंसा, झूठ, चोरी और अब्रह्म इनकी परिभाषाएँ बताई जा रही हैं क्योंकि जिसका हमें परित्याग करना है उसके बारे में हमें ज्ञान होना चाहिए। जो करना है वह कुछ और नहीं करना होता। जो करते आ रहे हैं उसको नहीं करने का नाम ही व्रत होता है। इसलिए यहाँ पर अहिंसा की, सत्य की परिभाषाएँ नहीं बताई जा रही है। यहाँ पर हिंसा की, झूठ की, चोरी की, कुशील की, परिग्रह की परिभाषाएँ बताई जा रही हैं। जिसको हमें छोड़ना है, जिसका हमारे लिए निषेध है, उसके बारे में जानना तो आचार्य यहाँ पर बहुत ही छोटे से सूत्र में कहते हैं:

'जो अब्रह्म है, वह मैथुन का भाव है'

यह जो भाव उत्पन्न होता है यह चारित्र मोहनीय कर्मों के उदय के कारण से होता है। जब चारित्र मोहनीय कर्म का तीव्र उदय होता है तभी उस तीव्र कषाय के उदय में ही ये नौ कषाएँ तीव्र भाव पैदा करती हैं और उसी के फल स्वरूप एक आत्मा के अंदर अभिलाषा, इच्छा, desire पैदा होती है, जो उसे पर के साथ रमण करने में सुख उत्पन्न करने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। उसी को यहाँ पर अब्रह्म कहा गया है।

'मिथुनस्य भाव: मैथुनं' कहा जाता है। 'मिथुन' अर्थात् होता है दो लोगों के बीच में जो यह प्रक्रिया होती है, उसको यहाँ पर अब्रह्म के रूप में कहा गया है। अब यहाँ पर यह समझना होगा कि यह समलैंगिक में भी होता है और विषमलैंगिक में भी होता है। यह स्त्री-स्त्री के बीच में भी हो सकता है, स्त्री-पुरुष के बीच में भी हो सकता है और पुरुष-पुरुष के बीच में

भी हो सकता है। क्योंकि वेद का भाव, कषाय का भाव, नौ कषाय का भाव यह सब अंतरंग में है और उसी के अनुसार यह परिणाम उत्पन्न होते हैं तो वह एक जैसे जिसके परिणाम उत्पन्न होते हैं, वे जब दो लोग मिल जाते हैं तो उनके बीच में भी यह अब्रह्म घटित हो जाता है। वर्तमान में भी यह सब चीजें देखने को, सुनने को मिलती हैं। समलैंगिक भी अब्रह्म होता है और विषमलैंगिक भी अब्रह्म होता है। यहाँ पर मैथुन शब्द दिया गया है यानि दो के बीच में जो हो रहा है मिथुन मतलब जोड़ा होता है, दो होते हैं।

अब्रह्म क्या है**?**

दो के बीच में जो चारित्र मोहनीय कर्म के उदय के कारण से अपने राग की पूर्ति करने के लिए, जो अपने अंदर स्पर्शन इंद्रिय आदि के सुख को प्राप्त करने के लिए या रति भाव को पूर्ण करने के लिए जो क्रिया की जाती है उसका नाम अब्रह्म कहलाता है।

अब्रह्म की व्यापक परिभाषा

अब यहाँ दो का मतलब दो से तो है ही है लेकिन यहाँ पर इस परिभाषा में अगर हम देखें तो यह परिभाषा अव्यापक नहीं है, छोटी नहीं है। कभी-कभी दो के बिना अकेले में भी जीव इस तरह के अब्रह्म का भाव करता है। अकेले में भी कोई भी हो, स्त्री हो, पुरुष हो, वह भी अब्रह्म का भाव करता है, कर सकता है। जब उसके अंदर तीव्र राग का उदय होता है तो वह अपने भी शरीर से कुचेष्टाएँ कर सकता है।

अपने शरीर से की जाने वाली जो कुचेष्टाएँ होंगी तो उस समय पर भी यहाँ पर 'मैथुनमब्रह्म' यही घटित होगा। अब आप पूछेंगे यहाँ पर मैथुन क्या हो गया? यहाँ पर भी दो हो गए। मिथुन मतलब क्या है? दो! दो का मतलब दो व्यक्ति ही नहीं है, दो भाव होते हैं। आपके मन में जो राग भाव पैदा हो रहा है, वह राग भाव और आप। ये दो चीजें हो गई। राग भाव और वह व्यक्ति स्वयं। राग भी उसका नहीं है, वह राग के वशीभूत होकर के, राग की ही पूर्ति करने के लिए, उस राग की ही शांति करने के लिए वह इस प्रक्रिया को अपनाता है तो अपने ही शरीर से कुचेष्टाएँ करता है। यहाँ पर भी वह भाव घटित हो जाता है जिसको यहाँ मैथुन के रूप में कहा जा रहा है। यहाँ पर भी द्वित्व का भाव आ गया। एक वह आत्मा

और एक उसके अंदर का राग भाव। राग के कारण से वह आत्मा वैसा कर रहा है, वैसा करना उसके लिए जरूरी नहीं है लेकिन राग उसके लिए सहन नहीं हो रहा, इसलिए वैसा करके ही वह उसका सुख ले रहा है और वह अब्रह्म की क्रिया कर रहा है। यह एक में भी घटित होता है, अगर हम इस तरह की दृष्टि से देखें और यह गलत भी नहीं है कि एक में दो चीजें घटित होती हो। यह गलत नहीं है। कैसे गलत नहीं है?

जैसे आपने देखा होगा कि एक में ही कभी जैसे मान लो कोई भूत या कोई ऊपरी बाधा किसी को लग गई। अब आदमी तो एक ही रहता है, तो वह जो क्रिया करता है वह भूत की बाधा के कारण से करता है। उसका बोलना, चिल्लाना, उछलना, तरह-तरह की शारीरिक चेष्टाएँ करना। वह किससे कर रहा है? वह उसी भूत के कारण से कर रहा है। वह भूत उस में समाया हुआ है लेकिन वह भूत कहीं अलग से नहीं दिख रहा है। कोई भूत उसको अलग से नहीं पीटता है, अलग से उसके लिए कोई चेष्टाएँ नहीं कराता, वह उसमें समा जाता है। जिस तरीके से भूत के कारण से उस व्यक्ति के अंदर अनेक तरह की कुचेष्टाएँ देखने को मिलती हैं, उसी तरीके से यह राग और वेद के परिणाम भी उस आत्मा को अनेक तरीके की कुचेष्टाएँ करा देते हैं। इसलिए एक में दो चीजें घटित होने में भी कोई बाधा नहीं है और इसलिए यहाँ पर यह जो परिभाषा है, यह हमेशा के लिए व्यापक है कि कभी भी जो अब्रह्म की क्रिया होगी वह स्वयं में भी अगर हो रही है तो वह स्व भाव के साथ में नहीं हो रही है, पर भाव, राग भाव के साथ हो रही है। जो कर्म का तीव्र उदय है, नोकषाय का तीव्र उदय है उसके कारण से हो रही है और उसके लिए जो साधन अपनाता है वह उसका नोकर्म होता है। यहाँ पर देखें कि बहुत सारी चीजें अलग-अलग हो गई। कर्म भी अपने से अलग है, उससे उत्पन्न होने वाला राग भाव, वह अपने से अलग है। फिर उसके कारण से जो शरीर में चेष्टा करके वह सुख पा रहा है, उसका भी जो शरीर है, वह भी अलग है।

अब्रह्म का कारण

ये सब चीजें इसी में गर्भित हो जाती हैं जो दो या दो से अधिक भी चीज आ रही हैं ये सब इसी अब्रह्म की प्रक्रिया में आ जाती हैं। यह सब होता है- चारित्र मोहनीय कर्म के तीव्र उदय होने पर। यानि कषाय के उदय में ही चारित्र मोहनीय कर्म का बंध होता है और कषाय

का उदय होना ही बताता है कि यह व्यक्ति चारित्र के धारण करने में या चारित्र को पालन करने में असमर्थ है। इसलिए जिसके अंदर चारित्र मोहनीय कषाय का तीव्र उदय रहता है, उसमें यह अब्रह्म का भाव सबसे ज्यादा देखने को मिलता है और यह भाव भीतर के वेद के राग के साथ होता है। एक तो भीतर का राग भाव और उसमें जुड़ गया वेद भाव तो यह दोनों के साथ मिलकर चलता है। इसलिए आचार्यों ने इसको एक अंतरंग परिग्रह के रूप में लिखा है-

'मिच्छतवेयराया तहेवहस्सादियायचछ्तोसा चत्तारिकहकषाया चौदस अभ्यंतरा गन्था'

ये चौदह अभ्यंतर ग्रंथ मतलब परिग्रह बताए गए हैं जिसमें मिथ्यात्व, वेयराया यानी वेद का राग यह एक अच्छा शब्द दिया है। यानि वेद संबंधी जो राग है वह परिग्रह है। जिसके कारण से वह स्त्री है तो पुरुष में, पुरुष है तो स्त्री में या स्त्री स्त्री में या पुरुष पुरुष में या कोई भाव से नपुंसक भी होता है, तो वह स्त्री में भी, पुरुष में भी वह दोनों में राग करेगा। इस वेद राग की जो उसके अन्दर एक धारणा बनी हुई है, उस धारणा को नहीं छोड़ पाना, उस वेद के राग को नहीं छोड़ पाना और उसमें उसे बहुत कष्ट महसूस होना, उससे हटने में उसे बिल्कुल ही सुख नहीं मिलना- यह बहुत बड़ा उसके अंदर का परिग्रह है। यह अंतरंग परिग्रह है।

यानि आप देखें जैसे यहाँ पर हिंसा के लिए जो कारण बताया था 'प्रमत्त योगात्' यह भी एक अंतरंग परिग्रह के रूप में ही कारण है। यह पहले सिद्ध किया जा चुका है। इसी प्रमत्त योग को आप 'अनृत' में भी जोड़ेंगे और इसी को आप 'अदत्तादान अस्तेय' में भी जोड़ेंगे और इसी को आप अब्रह्म में भी जोड़ेंगे तो यह भी प्रमत्त योग से ही होगा। जो अप्रमत्त होगा, जिसके अंदर सावधानी होगी, जिसके अंदर राग की कमी होगी, वह इस अब्रह्म में नहीं पड़ेगा। जिसके लिए राग की तीव्रता होती है, उसी के लिए यह अब्रह्म का भाव ज्यादा आएगा और इस अब्रह्म में आप देखेंगे कि जैसे हिंसा में आदमी मतवाला होता है, उसी तरीके से इस अब्रह्म की क्रिया में भी वह बिल्कुल मतवाला होता है। उसमें उसको कुछ भी समझ नहीं आता या कुछ भी उसे यह ध्यान नहीं रहता कि मैं क्या? मेरा स्वरूप क्या? इसलिए इसको भी प्रमत्त योग के साथ में जोड़कर के समझना है। प्रमत्त योग के साथ में जो यह प्रक्रिया चल रही है, चारित्र मोहनीय कर्म के तीव्र उदय के कारण से इसी का नाम यहाँ

पर अब्रह्म कहा जा रहा है। अब्रह्म का मतलब है ब्रह्म से रहित हो गए। ब्रह्म मतलब हमारा आत्मा का स्वभाव, शुद्ध स्वभाव।

जो व्यक्ति आत्म स्वभाव से रहित होगा, वह जब भी कभी शरीर में सुख की इच्छा से रति करेगा तो उसके लिए यह अब्रह्म का सेवन करने का भाव आएगा तब उसको अब्रह्म कहा जाएगा। अब आप यह देखें कि इसमें भी भाव भीतर ही की प्रधानता का ही है। किसी भी व्यक्ति के शरीर से लग जाना उसको अपने शरीर में, अपनी गोद में ले लेना या शरीर से उसके खेल लेना यह दो तरह के भावों से होता है। एक तो तीव्र राग भाव के साथ होता है, जो ये नोकषाय, पुरुष वेद या स्त्री वेद, नोकषाय जनित भाव के कारण से होगा और एक यदि होगा तो सामान्य मोह भाव के कारण से होगा। पिता अपने बेटे को, बेटी को अपने गले से लगा लेता है, भाई है, बहन के गले से लग जाता है। यहाँ पर वह जो भाव है वह भाव दूसरा है और यहाँ पर जो मैथुन का भाव है, यह भाव दूसरा है। क्रिया एक जैसी होते हुए भी आप देखेंगे कि भाव के कारण से यह भाव अब्रह्म का नाम पाएगा, वह भाव केवल मोह का नाम पाएगा। इसलिए यह सभी जो परिभाषाएँ हैं, ये सभी परिभाषाएँ आध्यात्मिक हैं, भाव प्रधान हैं।

अब्रह्म का मतलब अगर हम इस तरीके से देखें कि जो हमारे ब्रह्म से हमको हटा दे, हमारे अपने स्व भाव से हमको हटा दे वे हमारे लिए अब्रह्म है। वह अब्रह्म के भाव में जो नोकषाय वेदनीय जन्य रति उत्पन्न होती है उसको हम मैथुन कहेंगे और उसी को हम अब्रह्म कहेंगे। इस तरीके का यह भाव भी पाप भाव माना जाता है। क्या कहा गया उसको? सभी पाप है- हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह। इसे पाप समझ करके पाप से विरति होना, पाप से दूर होना, यह पाप भाव समझ करके इससे हटना, यह इसलिए यहाँ पर पाप के बारे में बताया जा रहा है। पाप से विरति लेना है। शुभ तो अपने आप हो जाएगा, पुण्य तो अपने आप हो जाएगा, पवित्रता तो अपने आप आ जाएगी। पाप से विरति पहले होना चाहिए। जब तक पाप से विरति नहीं होती तब तक कोई भी पवित्रता का भाव आत्मा में पैदा नहीं होता। अपने ब्रह्म के निकट आने के लिए यह अब्रह्म को छोड़ना भी जरूरी है और इस पाप से विरति होने पर ही वह व्यक्ति अपने स्व स्वरूप को समझ पाता है।

इसलिए ये परिभाषाएँ आध्यात्मिक हैं, आगे भी जो परिग्रह की परिभाषा बताई जा रही है वे भी आध्यात्मिक परिभाषा है।

मूर्च्छा परिग्रह: ॥**7.17**॥

पाँचवाँ पाप! परिग्रह पाप है। उस परिग्रह को यहाँ पर सिर्फ इतनी सी व्याख्या में रखा गया 'मूर्च्छा' मूर्च्छा का मतलब? अब आप अपनी भाषा में समझें। लौकिक भाषा में तो मूर्च्छा का मतलब मूर्छित हो गया, बेहोश हो गया, अचेत हो गया, सुध-बुध खो गया, senseless हो गया। जब ऐसा कोई दिमाग में चक्कर आता है, वह गिर पड़ता है या किसी भी दौरे के माध्यम से कोई भी जो है उसके लिए एकदम से बेहोशी का भाव आ जाता है, तो इसको जो है मूर्च्छा कहा जाता है। हम लौकिक जगत में इसको मूर्च्छा इस तरीके से बोलते हैं। अब इसी को यहाँ पर जो है मूर्च्छा का मतलब मोह भाव। यह मूर्च्छा शब्द मोह से बनता है, तो मोह के कारण से जो वह किसी भी चीज में इतना indulge हो जाए कि वह उसके अलावा और कुछ न जाने, न कुछ समझे तो वह चीज उसके लिए मूर्च्छा बन जाती है। परिग्रह का मतलब ही यह होता है कि वह आपको चारों ओर से ग्रह मतलब ग्रहण कर लेता है, परि मतलब चारों ओर से, 'आसमन्तात् परिग्रहणम् परिग्रह' चारों ओर से जो आपको घेर ले मतलब अपनी गिरफ्त में आपको ले ले, वह भाव आपके लिए परिग्रह बन जाता है। वह भाव आपको बाहर की किसी भी व्यक्ति से भी जोड़ सकता है, किसी वस्तु से भी जोड़ सकता है और वह भाव अगर अंदर रहेगा तो उसके अभाव में भी वह उस भाव के कारण से दुःखी बना रहेगा।

Class 17

यानि पहले तो होना चाहिए मूर्च्छा, तब जो है किसी दूसरी चीज से जुडाव आता है। मूर्च्छा होने पर ही वह किसी भी, चाहे वह चेतन वस्तु हो, चाहे अचेतन वस्तु हो, किसी भी वस्तु के प्रति जो अपना मोह भाव रखेगा, राग भाव रखेगा वह पहले भीतर मूर्च्छा के भाव से शुरू होगा। अगर उसको उसके अनुकूल कोई वस्तु मिल गई तो तो उसके लिए वह हो गई और नहीं मिली तो भी उस भाव के कारण से वह भीतर से दुःखी बना रहेगा। उसके भीतर वह पाप का भाव चलता रहेगा। यह मूर्च्छा का भाव एक तरह का आदमी को भीतर से एक

अचेत ही कर देता है क्योंकि जब आप किसी भी चीज से बहुत ज्यादा जुड़ गए और उसी के बारे में आपको हमेशा ध्यान है तो वह आपके भीतर का जो चैतन्य भाव है उसको उसने अचेत कर दिया। आपको अपनी कोई सुध-बुध नहीं। हमेशा क्या लगी है? यह चाहिए, यह, इकट्ठा करना है, यह हमको मिल जाए, इस तरीके की जो हमेशा बुद्धि चलती रहती है 'मम् इदं, मम् इदं' यह मेरा है, यह मुझे मिल जाए, यह मेरा हो जाए। यह जो 'मम् इदं' चलता रहता है यह मेरापन, इसी मेरेपन के भाव की गाढता का नाम मूर्च्छा होता है।

मूर्च्छा ही परिग्रह है

अब आप देखो यह मूर्च्छा यहाँ तक होती है कि अगर आप का भाव किसी चीज से जुड़ा है तो आप भले ही कुछ भी सुन रहे हो, कुछ भी देख रहे हो लेकिन आपका भाव लगेगा वहीं पर जहाँ पर आपकी मूर्च्छा है। मतलब कि यह मूर्च्छा का भाव कहीं और मन लगने नहीं देता। यह मूर्च्छा का भाव किसी और जो उसके लिए अचेत से चेत करने वाली चीज होगी, उससे उसको बचाएगा और उसी में उसको लगाए रखेगा जिससे कि वह पहले जैसा अचेत ही बना रहे। मन हमेशा कभी भी सोते-जागते, जब भी कभी आप सोने के बाद उठेंगे, बैठेंगे तो आपके दिमाग में सबसे पहले क्या भाव आता है, आप यह देखना? सुबह उठने के बाद सबसे पहले आप यह देखना कि सबसे पहले हमारा दिमाग कहाँ जाता है? हम किस बारे में विचार करते हैं? आपके लिए जहाँ चिंता पड़ रही होगी, जहाँ मूर्च्छा पड़ रही होगी, सबसे पहले mind वहीं जाकर click करेगा। आप देखना, जिस दिन आपको निश्चिंतता होगी तो धर्म ध्यान में मन लगेगा और निश्चिंतता नहीं है, तो आपके दिमाग में वह चीज चुभती रहेगी। वह चीज बार-बार वहीं पर जाकर click करता रहेगा, उपयोग वहीं पर जाकर लगा रहेगा। आप पूजा करेंगे तो, णमोकार का जाप करेंगे तो, जाप भी करेंगे लेकिन mind बार-बार वही छुएगा, वही चिंता में जिसमें पड़ा हुआ है, उसी में लगा रहेगा। मूर्च्छा ही परिग्रह बन जाती है। मूर्च्छा ही भीतर का, आत्मा का परिग्रह है और जो बाहर का परिग्रह है यह तो उपचार से कहा जाता है। भीतरी परिग्रह तो मूर्च्छा ही है। इसलिए अगर हम अध्यात्म की दृष्टि से देखें तो एक बहुत अच्छी चिंतन की बात आती है कि मूर्च्छा ही परिग्रह है। मूर्च्छा और परिग्रह अलग-अलग नहीं है, मूर्च्छा ही परिग्रह है और मूर्च्छा है तो परिग्रह है और वह परिग्रह अगर नहीं भी बाहर है, तो भी भीतर से वह परिग्रह वाला है।

क्योंकि उसका मन उसी में मूर्छित हो रहा है, उसी में लग रहा है। जिसके प्रति उसका मन मूर्छित है, उस चीज को प्राप्त करने में, फिर उसका संरक्षण करने में, फिर उसको जो है हमेशा बनाए रखने में उसका मन हमेशा लगा रहेगा। यह कहलाता है- परिग्रह। परिग्रह तो बाहर बाद में आया, पहले भीतर से तैयार हुआ।

बाहर का परिग्रह औपचारिक भीतरी परिग्रह मुख्य है

बाहर का परिग्रह तो औपचारिक है, भीतरी परिग्रह मुख्य है जैसे कि हम कहते हैं प्राण हैं तो हम कहते हैं धन भी प्राण है, अन्न भी प्राण है, ये तो बाहर की बातें बाद में है। यह प्राण तो बाद में है पहले तो प्राण हमारे क्या हैं? जो हमारा अपना जीवन है, आयु कर्म है, बल है, इन्द्रियाँ हैं, ये प्राण हैं। इन प्राणों के लिए सहयोगी बन जाता है यह अन्न, यह धन इसलिए वह भी प्राण हो जाता है। सबसे पहला परिग्रह तो हमारे अंदर का वह मूर्च्छा भाव है, उसके लिए सब बाहर की चीजें सहयोगी बनती हैं। जिन चीजों से यह मेरे पन का भाव जुड़ता है यह मेरा, यह मेरा, यह मेरा। अब यह मेरेपन का भाव देखो आप कितनी चीजों से जुड़ा हुआ रहता है। कितनी चीजों के साथ में हम अपने आप को जोड़े हैं और इन चीजों से जब तक मम भाव नहीं छूटता तब तक परिग्रह हटा, ऐसा पुरुषार्थ ही नहीं होता। परिग्रह को पाप समझें और परिग्रह का जो पाप है वह भीतर का मूर्च्छा भाव है और वह मूर्च्छा भाव जो हमें दूसरी चीज से इतना मोहित कर दे कि हम उसके बिना अपने को कुछ भी न समझ पाएँ, न जान पाएँ यह मूर्च्छा ही हमारे लिए पाप है और इसी को त्यागने के लिए यहाँ कहा जा रहा है। व्रत में और कुछ नहीं करना होता है 'विरतिर्व्रतम' विरति लेना है। किससे लेना है? परिग्रह से तो विरति इसलिए ली जाती है कि यह परिग्रह हट गया तो भीतर की उतनी मूर्च्छा हट गई। जब परिग्रह हटे तो यह भी ध्यान में रहे कि हम मूर्च्छा भी हटा रहे हैं कि नहीं हटा रहे हैं। परिग्रह हटने पर मूर्च्छा भी हटनी चाहिए और जिस परिग्रह से मूर्च्छा हट जाएगी तो उस परिग्रह के प्रति फिर उसके अंदर आसक्ति नहीं रहेगी। उस परिग्रह को ग्रहण करने में, उस परिग्रह को संरक्षण करने में वह कभी आनंद नहीं मनाएगा क्योंकि उसकी मूर्च्छा उस से हट गई है। वह उस परिग्रह के बिना भी रह सकेगा और उस परिग्रह के बिना जब उसके अंदर रहने में शांति आएगी तब समझ में आएगा कि मूर्च्छा का अभाव

हुआ है और मूर्च्छा के अभाव से उस आत्मा में शांति का भाव आ रहा है। यह मूर्च्छा भी परिग्रह हैं।

व्रती कैसा होना चाहिए**?**

अब आचार्य कहते हैं- देखो! ये पाँच पाप है, इनसे आपको विरति लेने का नाम व्रत कहा गया, यह आपने व्रत के रूप में समझ लिया। अब यहाँ पर पहले जो परिभाषा बताई थी।

हिंसानृत-स्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं॥

पहले यह परिभाषा बताई थी, यह व्रत की परिभाषा थी। अब यहाँ उन व्रतों को जो धारण करें, वह व्रती कैसा होना चाहिए? उसकी परिभाषा बता रहे हैं। यह तो व्रत हो गए पाँच व्रत, इन पाँच व्रतों को कोई भी ले सकता है। लेकिन व्रती कौन कहलाएगा? कोई भी ले लेगा तो हर कोई व्रती हो जाएगा क्या? आचार्य कहते हैं-

नि:शल्यो व्रती॥**7.18**॥

जो नि:श्ल्य होगा वह व्रती कहलाएगा। अब देखो! यह कितनी अच्छी परिभाषा है। व्रत तो कोई भी ले सकता है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, यह दुनिया का कोई भी व्यक्ति अगर समझ ले तो इन पाँच पापों से अपनी प्रवृत्ति रोक सकता है और उसको किसी भी तरीके की इसमें धर्म की कोई बात समझ में नहीं आएगी और न इसमें कोई उसको ऐसा लगेगा कि यह कोई विशेष कोई धर्म की चीज है या किसी संप्रदाय की चीज है। पाँच पापों से विरति उसके लिए समझ में आ जाएगी तो उसे बड़ी आसानी से ग्रहण करने का भाव बन जाएगा। यह हो गई उसकी विरति। यह क्या हो गया? व्रत हो गया। लेकिन वह व्रती नहीं हुआ। व्रत होने के बाद व्रती क्यों नहीं हुआ? यह व्रती की परिभाषा बहुत अच्छी है। 'नि:शल्यो व्रती' शल्य से रहित होना और फिर व्रत वाला होना, ये दोनों चीजें हो तब बनेगा वह व्रती। एक चीज से व्रती नहीं बनेगा। व्रत लेने मात्र से व्रती नहीं होगा या केवल शल्य से रहित हो गया तो व्रती नहीं होगा। जो शल्य से भी रहित हो और व्रत भी लिए हुए हो तो उसका नाम है- व्रती। मतलब व्रती के अंदर केवल इतना नहीं है कि व्रत आ गए तो व्रती हो गया। उसका एक जो background होना चाहिए वह इस तरीके से पहले से prepared होना चाहिए, जो नि:शल्यता के रूप में बताया जा रहा है।

शल्य का मतलब?

शल्य रहित! शल्य मतलब होता है- कांटा, कोई भी चीज जो आपके लिए चुभ जाए, चाकू, कोई भी चीज, तीर, ये सब क्या हो गये? यह शल्य हो गए। जो चुभते हैं और जिस तरीके से चुभने के बाद में चुभन पैदा करते रहते हैं, उस तरीके के भीतर के कुछ भाव होते हैं, जो भीतर ही भीतर हमें चुभते रहते हैं और उसके कारण से हम भीतर से नि:शल्य नहीं हो पाते हैं। उन भावों से पहले रहित होना। यानि व्रती के लिए नि:शल्य होना जरूरी है। नि:शल्य का मतलब है- तीन प्रकार की शल्यों से रहित होना। तीन बाण हैं। कौन-कौन से? माया शल्य, मिथ्या शल्य और निदान शल्य।

'मायाशल्य' का मतलब मायाचारी का भाव। व्रतों के साथ में माया का, छल कपट का भाव नहीं होना कि हम व्रत ले रहे हैं, केवल दिखाने के लिए ले रहे हैं, समाज में पूजा होगी इसलिए ले रहे हैं, लोक में ख्याति मिलेगी इसलिए ले रहे हैं। यह सब क्या हो गया? यह मायाचार का भाव हो गया। मायशल्य रहेगी तो व्रतों के पालन में उसका कभी भी मन लगेगा नहीं और लग भी गया तो उस व्रतों के माध्यम से उसकी वह कर्म निर्जरा नहीं होगी क्योंकि उसके अंदर अभी निश्छलता के साथ में व्रत पालने का भाव नहीं आया। यह मायाशल्य कहलाती है। अब मायाशल्य में मायाचारी तो भीतर पड़ी रहती है और व्रत लेकर वह व्रती भी हो सकता है और वह उन व्रतों के साथ रहते हुए अपनी मायाचारी को छुपाता भी रहता है और अपनी मायाचारी को वह खुद जानता भी रहता है लेकिन वह उसको छोड़ नहीं पाता है। क्योंकि उसने उद्देश्य शुरू से यही बना कर रखा है। अब वह व्रती बनने के बाद में उस मायाचारी को नहीं छोड़ने के कारण से वह व्रती-व्रती तो कहलाया। दुनिया ने उसको व्रती कहा लेकिन भीतर से वह अपने अंदर मायाचार के कारण से उस व्रत को आत्मसात नहीं किया। यही एक बहुत बड़ी माया हो गई।

दूसरा आपसे कह रहा है- व्रती, व्रती, व्रती और आपको भीतर से व्रती का कोई भाव नहीं तो यही कितनी बड़ी मायाचारी हो गई कि हमारे अंदर तो व्रती का कोई भाव नहीं, हम तो किसी भी तरीके से व्रत को कोई अच्छे ढंग से पालन करने के भाव में नहीं और सामने वाला हमें पूज रहा है- व्रती, यह व्रती, यह व्रती। यह मायाचारी जब तक रहती है तब तक

उस शल्य के कारण से, उस पीड़ा के कारण से उसे कभी भी व्रत पालने का अंतरंग से भाव नहीं आता, वह बाहर से व्रती बन जाता है। हर चीज में बाहर से भी और भीतर से भी हैं। जैसे पाप बाहर से भी है भीतर से भी है, परिग्रह बाहर से भी है भीतर से भी है, मैथुन अब्रह्म बाहर से भी है, भीतर से भी है, हिंसा बाहर से भी है भीतर से भी है। ऐसे ही व्रत! जब अव्रत बाहर से है भीतर से है, तो व्रत भी बाहर से भी हैं, भीतर से भी हैं। जब व्रत बाहर से ही बाहर से होंगे तो वह केवल द्रव्य व्रत, उसी को द्रव्य लिंगी कहते हैं। जब व्रत भीतर से होते हैं तो भाव व्रत, उसको भाव लिंगी कहते हैं। इसका नाम है- भाव लिंगी। अगर यह माया नहीं है, मिथ्या शल्य नहीं है, निदान शल्य नहीं है तो उसका भाव लिंग बनेगा। यूँ समझ लो आप यह भाव लिंग की पहचान है। भाव लिंग केवल महाव्रती के साथ ही नहीं होता, अणुव्रती के साथ भी होता है। क्योंकि व्रती के साथ यह नि:शल्यपना होने को कहा गया है। व्रती दोनों प्रकार के व्रती हैं 'देशसर्वतोणुमहती' पहले कह चुके हैं और अभी आगे फिर कहने वाले हैं। सब प्रकार के व्रती, द्रव्य लिंग और भाव लिंग केवल मुनि महाराज से नहीं जुड़ा होता, जो लोगों ने सीख रखा है। यह भाव लिंगी मुनि, यह द्रव्य लिंगी मुनि, श्रावक भी होता है- भाव लिंगी, द्रव्य लिंगी। सम्यग्दृष्टि भी होता है- भाव लिंगी द्रव्य लिंगी।

Class 18

मिथ्या शल्य

अविरत सम्यग्दृष्टि जिसके लिए लोग सम्यग्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि कह रहे हैं, बाहर से तो खूब भगवान की पूजा कर रहा है, भक्ति कर रहा है और भीतर उसके अंदर मिथ्या शल्य पड़ी हुई है। वह क्या कहलाएगा? वह भी द्रव्य लिंगी है। वह बाहर से द्रव्य रूप से सम्यग्दर्शन को पालन कर रहा है लेकिन भीतर से उसका भाव कुछ नहीं है। सम्यग्दृष्टि तो लोग इसलिए कहने लग जाते है कि देखो! यह कितनी भगवान की पूजा करते हैं? कितनी भगवान की भक्ति करते हैं? और कितना अच्छा-अच्छा शास्त्र का ज्ञान बाँट रहे हैं? कितने ही लोगों के लिए जो है पंडित बना रहे हैं और इतना सारा ज्ञान तो लोग कहने लग जाते हैं उसमें क्या बात है? तुम तो समाज में जो चीजें परोसोगे, लोग उसी को जो है

स्वीकार करके आपको बहुमान देंगे और वह आपको जिस रूप में आप होंगे उसी रूप में आप को देखेंगे। आप अगर गृहस्थ हैं, व्रती नहीं हैं तो कहेंगे देखो! अच्छा है, गृहस्थ है, सम्यग्दृष्टि तो है। उस गृहस्थ को सम्यग्दृष्टि कहा जाएगा। अब उसे उसी में अच्छा लग रहा है कि चलो कम से कम हम लोगों को पढ़ा तो रहे हैं, ज्ञान तो बांट रहे हैं, कम से कम लोगों को धर्म के मार्ग पर तो लगा रहे हैं, बुरा क्या कर रहे हैं? लेकिन भीतर से उसके अंदर न कोई तत्त्व का श्रद्धान है, न कोई तत्त्व का भीतर से कोई उसे स्पर्श है, न कोई तत्त्व के प्रति उसकी कोई रूचि है। बस! उसका काम क्या है? बाँटना! तो बस वह बांट रहा है। दूसरों को बांटों और खुद खाली रहो। जब दूसरे को बांटने का ही उद्देश्य हो जाता है और खुद खाली रहता है, इसी का नाम हो गया, भाव लिंग भीतर से नहीं है केवल द्रव्य से जो हो रहा है उसके कारण से वाहवाही हो रही है। बस! यह सब जगह घटित होगा।

मिथ्या शल्य का मतलब ही है, तत्त्वश्रद्धान से रहित होना। भीतर आत्म तत्त्व की कोई रुचि नहीं, भीतर आत्म तत्त्व का कोई श्रद्धान नहीं। भले ही आप आत्म तत्त्व की कितनी ही बातें कर लो। कितनी ही बार आत्म तत्त्व की प्रधानता वाले जो आध्यात्मिक ग्रंथ हैं, आप उनको पढ़ लें। कितनी ही बार लोगों को पढ़ा लें लेकिन आपकी आत्म रुचि बने तब कुछ बात बने। अब जो व्यक्ति सौ बार पढ़ा चुका है या सौ बार सौ लोगों को पढ़ा चुका है उसकी जरूरी नहीं कि उसकी भी आत्म रुचि वैसी है, इसलिए पढ़ा रहा है। उसका तो एक trend बन जाता है। लोग कहते हैं- पढ़ाओ, पढ़ाओ, पढ़ाओ तो पढ़ाने लग जाता है। लोग कहते हैं- ज्ञान बांटो, बांटो, बांटो, वह बांटने लग जाता है। वह क्या करें? लोग उसको मजबूर करते हैं। उस स्थिति में उसके अंदर मिथ्या शल्य भी पड़ी रहती है और वह सम्यक्त्व की बातें करता रहता है। तत्त्व का श्रद्धान नहीं हो करके भी वह तत्त्व की बातें करता रहेगा। यह क्या कहलाता है? यह मिथ्या शल्य है। अब आप इसको अलग-अलग भी लगा सकते हो। कैसे? मिथ्या शल्य का संबंध सम्यग्दर्शन के साथ में है। जिसके अंदर सम्यग्दर्शन की प्रक्रियाएँ बाहर से दिख रही हों, सम्यग्दर्शन जैसा कुछ व्यवहार, बर्ताव, आचरण बाहर से दिख रहा हो और भीतर से उसके अंदर मिथ्या शल्य पड़ी हो। भीतर से तो वह द्रव्य लिंग ही है, भाव लिंग से रहित है और बाहर से वह सम्यग्दृष्टि नाम पा रहा है। इसकी कोई चर्चा करता ही नहीं है।

जब भी चर्चा आती है द्रव्य लिंगी- भाव लिंगी मतलब क्या? मुनि महाराज। द्रव्य लिंगी-भावलिंगी व्रती भी होते हैं, द्रव्य लिंगी- भावलिंगी गृहस्थ, अविरत, सम्यग्दृष्टि और मिथ्या दृष्टि भी होते हैं। जो गृहस्थ के लिए किसी भी प्रकार के सम्यग्दर्शन की उसे एक पहचान मिल रही है लेकिन उसके भीतर सम्यग्दर्शन नहीं है, तो वह भी तो इसी श्रेणी में आएगा। उसके लिए भी यह तीन शल्यों में से कोई न कोई शल्य कारण बन रही हैं, जिसका नाम है- मिथ्या शल्य। मिथ्या शल्य के कारण से एक अविरत व्यक्ति भी सम्यग्दृष्टि बाहर से होकर के भी भीतर से मिथ्या दृष्टि बना रहता है तो वह मिथ्या शल्य के कारण से सम्यग्दृष्टि वास्तव में जैसा होना चाहिए वैसा नहीं होता क्योंकि उसका भीतर से भाव लिंग नहीं हुआ। यह भी भाव लिंग है कि नहीं? भावों से ही तो सम्यग्दर्शन होगा। जैसे भावों से व्रत होते हैं वैसे भावों से सम्यग्दर्शन होता है। भावों से जब सम्यग्दर्शन नहीं हुआ तो यह मिथ्या शल्य के कारण से नहीं हुआ। फिर ऐसे ही माया। माया ज्यादातर आप इसको अगर लगा लो तो पंचम गुणस्थान के साथ में आ जाती है। किसके साथ? पंचम गुणस्थान के साथ इसको जोड़ लो। इस माया शल्य के कारण से पंचम गुणस्थान में जितने भी जीव वह सब माया शल्य के कारण से भी जो है भीतर से अपने व्रत का आस्वादन नहीं कर सकते या व्रती नहीं हो सकते। हमने यह व्रत ले लिया, हमने वह व्रत ले लिया अब कहने को तो बहुत लोग होंगे लेकिन उस व्रत की भावना के साथ में उस व्रत में तत्पर रहना और उस व्रत की भावना को पूर्ण करना यह जब तक नहीं आता तब तक वह माया शल्य के कारण से चलता रहता है।

निदान शल्य

निदान शल्य में मुख्य रूप से ले लो छठवें-सातवें गुणस्थान वाले। वैसे तो छठवें-सातवें गुणस्थान में निदान शल्य होगी नहीं लेकिन मुनि महाराज, मुनि व्रत जिन्होंने लिए हैं, वे अगर निदान भाव से हैं तो उनमें निदान की मुख्यता होगी। निदान का मतलब क्या है? आगामी भोगों की आकांक्षा। इस जन्म में तो पुण्य, पुण्य, पुण्य इकट्ठा किया जा रहा है। उन्हें पता पड़ गया पुण्य किससे मिलेगा? बोले मुनि बनने से पुण्य मिलता है तो मुनि बन गए। यह भाव भी अपने आप में एक भोग आकांक्षा का भाव है। अगर केवल पुण्य की

भावना है, केवल पुण्य, पुण्य, पुण्य के कारण से ही, पुण्य के फल से ही जो है सब अच्छा होता है, पुण्य के फल से ही संसार का सुख मिलेगा तो आखिर चाह तो संसार का सुख ही रहा है न। यह संसार का सुख जब तक इच्छा में है तब तक उसके लिए यह निदान का भाव है। यह निदान मतलब भावी भोगों की आकांक्षा। यह आकांक्षा भी एक शल्य के रूप में है। निदान शल्य के कारण से उसे महाव्रतों का जो भाव है वह पूर्ण रुप से आत्मसात नहीं होगा। इसलिए उसका गुण स्थान छठवाँ-सातवाँ नहीं बनेगा, बढ़ेगा नहीं। अतः व्रती के लिए सबसे जरूरी है इन तीन शल्यों का अभाव होना। मिथ्या दर्शन का कोई भी भाव नहीं होना, कोई भी तरीके से तत्त्व श्रद्धान में कमी नहीं होना, किसी भी तरीके की मायाचारी नहीं होना और कोई भी आगे के जीवन में कि स्वर्ग में जाऊँ कि चक्रवर्ती बनूँ कि इंद्र बनूँ कि तीर्थंकर बनूँ किसी भी तरीके की कोई भावना, भावी भोगों की आकांक्षा के रूप में नहीं होना। यह कहलाता है- तीन प्रकार की शल्यों से रहित और फिर व्रत लेना तो वह कहलाएगा 'नि:शल्यो व्रती' अब इसमें सभी व्रत आ गये। अणुव्रत, महाव्रत और अणुव्रत से पहले भी जो सम्यग्दृष्टि जीव के लिए ये पाँच पाप के त्याग रुप जो भी छोटे-छोटे व्रत होते हैं, वे भी आ गये। व्रत से पहले शल्य से रहित होना यह जरूरी बताया गया है।

आप देखेंगे दुनिया में दूसरे लोग व्रत तो ले लेंगे, हिंसा, झूठ, चोरी का त्याग तो कई लोग करते हैं। सब लोग इसको थोड़ा समझ कर के त्याग कर सकते हैं लेकिन वह सब व्रती कहलाएँ? क्यों नहीं कहलाएँगे व्रती? क्योंकि व्रती के लिए यहाँ शल्य से रहित होना बताया गया तो वह शल्य से रहित नहीं हो पाते हैं। शल्य से रहित होने का मतलब तभी होगा जब आदमी का केवल अपनी आत्मा को मोक्ष में ले जाने का एक शुद्ध भाव बन जाएगा। मुझे केवल मोक्ष की इच्छा है, आत्मा को केवल कर्म से रहित बना करके शुद्ध करने की इच्छा है। अगर यह केवल एक भाव रहे तो यह तीनों शल्य छूट जाएँगे। यह भाव नहीं आता तो काम बीच-बीच में बाहर से कुछ भी हो सकता है लेकिन भीतर का शल्य भाव बना रहने के कारण से वह भाव लिंग उसके अंदर नहीं आता। यह भाव लिंग तीनों के साथ जुड़ता है। शल्य की इस सद्भाव के कारण से ही वह बाहर से सब कुछ करके पुण्य प्राप्त करेगा। पुण्य से उसको सब तरीके का सुख मिलेगा लेकिन उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी क्योंकि उसके अंदर मोक्ष की भावना नहीं आती। दूसरे लोग भी व्रत तो ले लेते हैं लेकिन उनसे कहो कि

भाई किस लिए लिए हैं? अपनी आत्मा का कल्याण करना है? आत्मा क्या होती है? कल्याण क्या होता है? आत्मा को मोक्ष प्राप्त कराने के लिए आत्मा में कर्म की निर्जरा करने के लिए, यह सब कुछ नहीं मालूम। हमें तो यह मालूम है कि भाई हिंसा अच्छी नहीं, झूठ अच्छा नहीं, कुशील अच्छा नहीं, इसलिए हम को इससे दूर रहकर के रहने में अच्छा लगता है। आपने कहा व्रत ले लो तो हमने व्रत ले लिए। अब यह आत्मा के लिए लेना है, इससे आत्मा का कल्याण होगा, आत्मा की कर्म निर्जरा होगी, यह सब अपने उद्देश्य में नहीं है। आप कह रहे हो तब भी अपने उद्देश्य में नहीं आ रहा क्योंकि यह चीज हमें समझ में नहीं आ रही।

व्यक्ति को व्रत तो समझ में आ जाएँगे लेकिन शल्य से रहित होना समझ में आना यह कठिन चीज होती है। कोई भी non jain हो, कोई भी व्यक्ति हो उसको आप व्रत दिला सकते हो, आप उसे शल्य से रहित नहीं बना सकते। उसके अंदर तत्त्व रूचि उत्पन्न नहीं करा सकते। आप उसको सम्यग्दर्शन नहीं दिला सकते। आप उसके लिए जितनी आसानी से व्रत दे सकते हो उतनी आसानी से उसके अंदर से मायाचार का भाव, निदान का भाव, मिथ्यात्व का भाव नहीं मिटा सकते। अगर आप उससे कहोगे भाई एक व्रत ले ले इससे आगे बहुत सुख मिलेगा, सुखी रहेगा जीवन तो वह व्रत ले लेगा। किस कारण से? मुझे इससे जीवन आगे सुखमय मिलेगा। यह क्या हो गया? कौन सा सुख मिलेगा? बाबा बताओ कौन सा सुख मिलेगा? बाबा ने कहा तेरा सब घर परिवार अच्छा चलेगा, सब सुख मिलेगा तो ठीक है! मैं आज से यह हिंसा करना छोड़ देता हूँ। यह क्या हो गया? actually देखा जाए भीतर से तो यह क्या है? व्रती तो हुआ लेकिन अभी वह निदान भाव से रहित नहीं हुआ।

तत्त्व की श्रद्धा होना तो और बड़ी बात हो गई, वह तो बहुत ज्यादा उसके योग्य होगा, ज्ञानी होगा, उसका अभ्यास करेगा तब तत्त्व श्रद्धा बनेगी। वह तो और बड़ी बात हो गई और यह मायाचार मिथ्यात्व के साथ में छोड़ना, छल कपट का भाव छोड़कर के निश्छल होकर के व्रत भाव ग्रहण करना, यह भी उसके लिए कठिन हो जाएगा, अगर उसको यह पता पड़ जाए कि व्रत लेने से लोग हमारी समाज में इस तरीके से इज्जत करते हैं तो व्रत

ले लेगा। लेकिन उसके पीछे जो अपना छल का भाव है वह कभी नहीं बताएगा। बहुत से लोगों के लिए यह देखने में जब आता है कि इनको समाज के लोग इतनी पूछते हैं, इतना समाज में इनका जो है बहुमान होता है, तो बहुत से लोग केवल इसलिए व्रत ले लेते हैं। यह क्या हो गया? यह भीतर का मायाचार का भाव हो गया। यह बहुत अच्छी परिभाषा है- 'निःशल्यो व्रती' व्रत की परिभाषाएँ ऊपर बताई गई, वह अलग चीज है और यहाँ व्रती की परिभाषा बताई जा रही है। वैसे तो यही कहा जाता है जिसके पास व्रत हो, वह व्रती कहलाएगा। धन जिसके पास हो वह धनी कहलाएगा, राग जिसके पास हो वह रागी कहलाएगा। लेकिन यहाँ पर उसका जो कहना चाहिए ground है वह साफ करने के लिए यहाँ पर एक और शर्त डाल दी गई। व्रत होने मात्र से व्रती नहीं हो जाएगा। एक शर्त और डाल दी गई 'निःशल्यो व्रती' इसमें सब समाहित हो गया सम्यग्दर्शन भी आ गया, निश्छलता भी आ गई, भावी भोगों की आकांक्षा भी छूट गई। अब वह क्या करेगा? अगर सम्यग्दृष्टि जीव होता है तो उसके अंदर नियम से मोक्ष की ही इच्छा होती है। सम्यग्दृष्टि जीव हमेशा अपने आत्म तत्त्व ही इच्छा करता है। कोई भी संसार के विषय भोग की इच्छा नहीं करता। व्रती न भी होगा तो भी सम्यग्दर्शन का मतलब ही है कि अब उसकी संसार से इच्छा छूट गई। माया और निदान इन दोनों शल्यों से बढ़कर के मिथ्या शल्य इसीलिए है।

सबसे बड़ी शल्य कौन सी है**?**

अगर यह मिथ्या शल्य छूट जाती है तो निदान शल्य भी छूट जाती है, माया शल्य भी छूट जाती है। सबसे बड़ी चीज क्या है? भीतर की इस मिथ्या शल्य को छोड़ना और छूट गई तो उसको कैसे देखना? या तो माया की तरफ देखो या निदान की तरफ देखो। यह बीच में है। माया-मिथ्या-निदान ऐसे जानना। इस मिथ्या ने दोनों को पकड़ रखा है। मिथ्या के कारण से ही मायाचारी होगी और मिथ्या के कारण से ही वह निदान करेगा। इसका बीच में से अस्तित्व हट गया तो दोनों धीरे-धीरे अपने आप टपक जाएँगे। उनके लिए फिर ज्यादा बल नहीं मिलेगा। वह जिससे connected है, वह चीज मिथ्या है। दोनों ओर छोर तो ये हैं- माया और निदान और बीच में क्या है? मिथ्या। यह मिथ्या शल्य जो है यह सबसे बड़ी शल्य है। तत्त्व रुचि उत्पन्न होना, तत्त्व का श्रद्धान होना और जहाँ यह हो गया तो दूसरी

चीजों पर उसकी रुचि होगी कैसे? इसलिए यह बहुत अच्छी यहाँ पर बात कही जा रही है। व्रत लेने मात्र से व्रती नहीं होते, नि:शल्य होने से व्रती होते हैं 'नि:शल्यो व्रती'

—--